Reflections / My Voice

सरकारी नीतियों का अतिथि शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

कु.भानु प्रिया

अतिथि शिक्षक, सामाजिक विज्ञान

शिक्षाविदों के अनुसार एक शिक्षक के लिए परमावश्यक है कि वह उन सभी छात्राओं छात्रों की मनरूस्थिति को समझे जिन्हें वो पढा रहा है अथवा सिखा रहा है। वर्तमान समय में दिल्ली सरकार के केवल प्रतिभा विकास विद्यालयों को छोड़ कर अधिकतर स्कूलों में छात्र–छात्राओं की संख्या 75–110 प्रति कक्षा है। प्रत्येक शिक्षक एक दिन में कम से कम 5 कक्षाओं में जाता ही है और एक सप्ताह में लगभग 700 विद्यार्थियों से रू–ब–रू होता है। यह संख्या 700 इसलिए है क्योंकि स्कूल में अनुशासन बनाए रखने के लिए प्रत्येक शिक्षक को विषय के अतिरिक्त अन्य कक्षाओं में भी जाना पड़ता है। आंकड़ों के अनुसार सरकारी स्कूल साल के 365 दिन में 220 दिन लगते है, इन्हीं 220 दिनों में शिक्षक को समय–सारणी के अनुरूप अपने विषय को भी पढ़ाने के साथ–साथ पाठ्यक्रम भी पूरा करना होता है जो कि उनका एक शिक्षक के तौर पर मुख्य काम है। इसके आलावा शिक्षक को अन्य काम, जैसे परीक्षा के लिए प्रश्न–पत्र तैयार करना, परीक्षा परिणाम तैयार करना एवं अन्य कागजी काम भी निपटाने होते है। इस पूरे काम को करने के साथ शिक्षक से अपने सभी शिक्षार्थियों की मानसिकता को समझने की अपेक्षा करना हास्यास्पद लगता है। इस प्रकार की अपेक्षा एक शिक्षक की मनोस्थिति को किस हद तक बिगाड़ सकती है, इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। जबकि वास्तविकता यह है कि बालकों की मनरूस्थिति को समझने के लिए शिक्षक का स्वयं का मानसिक स्वास्थ्य ठीक होना अपरिहार्य है। वह तभी शिक्षार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं विकास को समझ सकता है जब स्वयं उसका मानसिक स्वास्थ्य बेहतर रहे, किंतु एक व्यक्ति से कंप्यूटर की भांति यादशक्ति की अपेक्षा करना क्या उचित है? मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकती हूँ कि ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि मशीन की भांति काम करते–करते स्वयं एक शिक्षक मशीन की तरह संवेदनहीन होने की स्थिति में पहुंच जाता है या पहुंच चुका है।

खेलते–कूदते बालकों का विद्यालय में प्रवेश इसलिए कराया जाता है कि उनका सम्पूर्ण विकास हो सके व वे चिंतनशील नागरिक बन सके। शिक्षकों की जिम्मेदारी में इन विद्यार्थियों को कक्षा पहली से कक्षा बारहवीं तक विद्यालयों में सीखने–सीखाने के प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है ताकि उसका भविष्य जीविकोपार्जन के क्षेत्र में सुरक्षित हो सके। समाज के भविष्य को सुरक्षित करने एवं राष्ट्र के निर्माण करने वाले इन असहाय शिक्षकों की दुर्दशा पर न तो प्रशासन का ध्यान जाता है, न नीति बनाने वालों का, न शिक्षाविदों का, न मनोवैज्ञानिकों, व न दर्शनशास्त्रियों का।

इन उपर्युक्त बातों को कहने का तात्पर्य आज की शिक्षा प्रणाली को दोष देना नहीं है बल्कि आपका ध्यान उस अन्याय की ओर आकर्षित करना है जिसे आज का शिक्षक झेल रहा है। इस अन्याय के बावजूद भी इस शिक्षक ये उम्मीद की जाती है कि वह अपनी आवाज को दबा कर केवल दी गयी जिम्मेदारियों का निर्वाह करता रहे। प्रशासन भी शिक्षक को केवल इस नजर से देखता है कि 6 घंटे काम के बदले ये तनख्वा प्राप्त करते हैं और इनका कोई अधिक काम तो होता नहीं है।

कोई तो इन शिक्षकों के साथ वैचारिक और मानसिक स्तर पर न्याय करने की पहल करे! पिछले 6 सालों में, क्षेत्रफल की दृष्टि से, दिल्ली जैसे छोटे प्रदेश में सराकारी स्कूलों में रिक्त शिक्षक पदों की संख्या बढ़ते– बढ़ते 22000 तक पहुंच गई है। सरकार का शिक्षा विभाग इन रिक्तियों को भरने के बजाये शिक्षित व योग्य दैनिक मजदूरों से काम ले रही है। आप यह न सोचें कि मजदूर जैसे अनपढ़ या कम पढ़े लिखे लोग सरकारी स्कूलों में शिक्षा देने का काम कर रहे है अपितु यह मजदूर वर्ग सुशिक्षित है और कम से कम 12वीं डाइट या उसके बराबर का डिप्लोमा, स्नातक, बी.एड. स्नात्तकोत्तर, बी.एड. जैसी उपाधियों से विभूषित होने के साथ साथ सी.टी.ई.टी पास है। इन दिहाड़ी मजदूरों की परिस्थितियां आम मजदूरों से कहीं अधिक बुरी हैं। आम मजदूरों की इच्छा हो तो वह रविवार, गांधी जयंती, होली, क्रिसमस, ईद या अन्य राष्ट्रीय पर्वों पर गुजर बसर करने के लिए 600–700 रुपये कमा सकते हैं, लेकिन दिहाड़ी मजदूर के पास यह अवसर भी नहीं होता क्योंकि स्कूल बंद होते हैं और इन शिक्षकों को केवल उतने दिन की ही मजदूरी दी जाती है जितने दिन स्कूल खुलता है। इसी दिहाड़ी मजदूर को आप अतिथि शिक्षक (Guest Teacher) के नाम से जानते है।

स्कूलों के कामकाज का बढ़ता बोझ और विद्यार्थियो की अधिक संख्या ने विद्यालयी वातावरण एवं शिक्षकों को भी शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ बना दिया है। परन्तु कम वेतन में अतिथि शिक्षक को अपने घर

खर्च की ही चिंता सताती है और यदि वह अगर कहीं किसी बीमारी का शिकार हो जाएँ तो समस्या और बढ़ जाती है। इन दिहाड़ी मजदूरों के साथ समस्या केवल उस वेतन भर की नहीं है जिसमें उसके परिवार का गुजर–बसर ठीक से नहीं चल पाता है, बल्कि उस अपमान और अभद्र व्यवहार की भी है जिसमें उसे खुद के अस्तित्व पर सवाल नजर आने के साथ–साथ अपनी काबलियत पर भी शक होने लगता है। उसके मन में पैदा होती हीन भावना या तो उस पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है, या फिर बदले की भावना उसे मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ती है। लेकिन इन सभी बिन्दुओं पर न तो शिक्षा विभाग ध्यान देता है ना ही सरकार का ध्यान इस ओर जाता है। ऐसी परिस्थितियां इंगित करती हैं कि सरकार कहीं ना कहीं निजी क्षेत्र को बढ़ावा देना चाहती है और अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी को नहीं निभाना चाहती क्योंकि इस क्षेत्र से सरकार को कोई विशेष आय नहीं होती।

एक ओर वर्तमान शिक्षक समाज के सामने रोजगार–अनिश्चितता और बेरोजगारी है तो दूसरी ओर इस अतिथि शिक्षक के सामने इस अनिश्चित मजदूरी की भी प्रतियोगिता है। एक ओर जहां यह स्वीकार किया जाता है कि मात्र अंको से प्रतिभा का मापन नहीं किया जा सकता, वहीं दूसरी ओर अतिथि शिक्षकों की नियुक्ति हेतु बनाई जाने वाली मैरिट सूचि अंको के आधार पर बनाई जाती है जो कि उनके शिक्षा के क्षेत्र में अर्जित किए गए अनुभव को बेकार साबित कर देती है और इस सूची में नाम न आने का डर इस अतिथि शिक्षक के मन में हमेशा बना रहता है।

इन शिक्षकों की मजदूरी की अधिकतम आयु सीमा 40 वर्ष है, जिसके बीतने के बाद ये शिक्षक स्थायी नियुक्ति के पात्र भी नहीं रहे जाते। माना जाता है कि हर साल 20 वर्ष में एक नई पीढ़ी तैयार हो जाती है। पिछले 6 सालों में दिल्ली के सरकारी स्कूलों में 22000 रिक्तियां तैयार हो चुकी हैं जिन पर इन सुशिक्षित मजदूरों को स्थायी नहीं किया जा रहा है। संविदा शिक्षक सुशिक्षित मजदूर के रूप में एक ऐसा आयु वर्ग है जो बेरोजगारी की पंक्ति में मौजूद है।

सरकार अपने विद्यालयों में इस तरह का माहौल क्यों बना के रख रही है? इन संविदा अध्यापकों के लिए सरकार की नियति व नीति क्या है? क्या कभी इन संविदा अध्यापकों को स्थायी किया जाएगा? मुझे ऐसा लगता है कि सरकार इस विषय पर गंभीर नहीं है क्योंकि इस शिक्षित बेरोजगारी का सरकार को पूरा लाभ मिल रहा है जिस कारण से संविदा अध्यापकों का शोषण किया जा रहा है। सरकार ना तो इन संविदा अध्यापकों को स्थायी कर रही है ना ही इन रिक्त पड़े पदों को स्थायी रूप से भर रही है जिसका असर सीधे तौर पर शिक्षार्थी पर पड़ रहा है। वर्ष में दो माह के अवकाश के समय ये शिक्षक बेरोजगार होते हैं तथा ऐसे में ट्यूशन केंद्रों के लिए कार्य करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ना ही इन्हें किसी प्रकार की PF बचत और ना ही किसी प्रकार की उपचार सुविधा उपलब्ध है। ये पूंजीवाद का अकेला पहलू नहीं है। इसका एक पहलू और भी है, जिसे कुछ हिसाब–किताब द्वारा समझा जा सकता हैरू विद्यालय साल में 220 दिन लगते है। दिल्ली के अतिथि शिक्षक 22000 पदों पर कार्यरत हैं, जिसे सरकारी आकड़ों में 17000 बताया जाता है। एकज्ळज्कीएकदिन की औसत तनख्वाह 800 रुपये है। प्रति अतिथि शिक्षक की औसत मासिक आय= कमाई के वार्षिकदिन'प्रति दिन वेतन'12 महिने= 220'800'12 = 14666.66– जबकि पे कमीशन के हिसाब से यह कम से कम 32000 रुपये मासिक हो जाते हैं। अब प्रशासन को एक मास में एक अतिथि शिक्षक से बचत होती है =32000–14666=17334 रुपयेप् एक मास में 17000 अतिथि शिक्षकों में प्राप्त बचत = 17334'17000 = 29,46,78,000–। एक मास की बचत लगभग 30 करोड़ है। वार्षिक का अनुमान स्वयं लगाया जा सकता है। इस धन में प्रशासन बड़े–बड़े 'विकास–कार्य' करता है। विद्यालयों में आए दिन नई–नई स्कीमें चालू करते है, राज्य में बड़े–बड़े फ्लाई–ओवर बनते हैंप् और भी बहुत सारे काम होते हैं, जिन्हें टेंडर या ठेके पर दिया जाता है, जिनका उद्देश्य है खोखली कागजी कार्रवाई और वाहवाही। बात यहीं खत्म नहीं होती, इस प्रक्रिया के तहत प्रशासन उन सभी खर्चों से भी बच जाता है जो उसके कर्मचारी का हक है – 10.7ः प्रोविडेंड फंड, ESI का वह खर्च जिसके तहत कर्मचारी सस्ती सेवा हासिल कर सकें, मातृत्व अवकाश और उस दौरान दिया जाने वाला वेतन आदि। इस तरह की और भी अधिकार है जिससे इन शिक्षकों को वंचित किया जा रहा है।

अगर बात भय, असुरक्षा और मानसिक द्वंद के विषय में की जाए तो समस्या एक नहीं अनेक हैं, हर पल अतिथि शिक्षकों के मन में डर बना रहता है की किसी भी पल कोई स्थाई टीचर प्रमोशन या ट्रांसफर लेकर उनके स्थान पर आ जाएगा और फिर वो बेरोजगार हो जाएगा। दोबारा नियुक्ति पाने के लिए उसे डीडी ऑफिस और प्लानिंग ब्रांच में धक्के खाने होंगे। जब तक नए सिरे से बनी मेरिट में उसका नाम नहीं आ जाएगा तब तक वह अपना घर खर्च कैसे चलाएगा। उसे हर पल डर सताता है की काम करते हुए उससे कोई गलती ना हो जाए नहीं तो बवंडर उठ खड़ा हो जाएगा अतिथि शिक्षक की गलती का हर्जाना सभी शिक्षकों को भुगतना होगा। जैसे शिक्षा मंत्री के नाम लिखे गए किसी प्रार्थना पत्र में अतिथि शब्द को गलत लिखा गया था तो शिक्षा मंत्री ने खुले मंच पर भरी मीडिया में अतिथि शिक्षकों की क्षमता पर सवाल खड़ा किया था एवं देश भर के सामने पूरे अतिथि शिक्षक समाज को अपमानित किया गया। जबकि 2014 में स्वयं शिक्षा विभाग ने एक सर्कुलर जारी किया जिसमें 5 सितंबर अध्यापक दिवस को 14 नवंबर (बाल दिवस) के नाम संबोधित किया गया था। बाद में इस घटना को गलती का नाम दिया गया। उनकी गलती मामूली सी चूक कहलाती है और अतिथि शिक्षक की

गलती पूरे अतिथि शिक्षक समूह का अपराध है।

एक वास्तविकता यह भी है कि इस अतिथि शिक्षक समाज में अपने विषय के ऐसे धुरंधर भी है जो स्थाई शिक्षकों के कान काटते हैं। इस काबलियत से जुड़ा एक तथ्य यह है कि जब विद्यालयों में किसी काम की पहल करने की बारी आती है तो गेस्ट टीचर आगे बढ़ कर काम करते हैं, हां इसकी एक वजह बेशक उनकी कम उम्र का होना भी है लेकिन जब उस पहल के बदले प्रशंसा की बारी आती है तो उसे स्थायी अध्यापक के हिस्से डाल दिया जाता रहा है क्योंकि सरकारी रिकॉर्ड में अतिथि शिक्षक परमानेन्ट एलिमेन्ट नहीं है बल्कि आने जाने वाला दैनिक मजदूर हैं। अधिकतर स्कूलों में देखा गया है कि स्कूल में एक रजिस्टरों में विद्यालय के कई कामों की ड्यूटी और इंचार्जशिप गेस्ट टीचर के नाम होती है जबकि सरकारी रिकॉर्ड और ऑनलाइन विवरण में उसके काम का नाम किसी स्थाई शिक्षक के सिर–माथे होता है। यह अतिथि शिक्षक नाम का प्राणी वह मूक मशीन बनकर रह गया है जिसके अनेक संचालक है और अपनी सुविधानुसार इसको घुमाते चलाते है। सोचनीय है कि एक प्राणधारी के साथ मशीनों जैसा व्यवहार उसके तर्क–विवेक और सुख–चौन को किस हद तक प्रभावित करता होगा ? उसके अंदर कितने क्रोध और ग्लानि के भाव को पैदा करता होगा ?

तनाव उस समय भी कम नहीं होता जब स्थायी टीचर अपनी गलतियों का प्रशासन के कोप भाजन से बचने के लिए अतिथि शिक्षकों को कहता है ष्तुम्हारा क्या है, आज इस स्कूल में और कल दूसरे में। तुम्हारा रिकॉर्ड कौन रखता है? तुम प्रींसीपल की डांट खा लोगे तो क्या फर्क पड़ेगा? हमारी परमोशन और नौकरी पर बन आएगीष। किसी दूसरे की गलती को जबरदस्ती अपने सिर इसलिए ले लेना ताकि वह कुछ दिन स्कूल के बीच बना रहे, कितनी मानसिक तकलीफ देता है, इसका अंदाजा लगा पाना भी बहुत मुश्किल है । यह तनाव सेशन के अंत में चरम पर होता है जब कक्षा के विद्यार्थी उसे कहते है ष्लीज छुट्टीयों के बाद भी हमें पढ़ाने जरूर आनाष। सेशन के अंत में मानसिक पीड़ा इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि अपने प्रियों (विद्यार्थियों) से बिछड़ना हर किसी को असहज होता है। विद्यालयी राजनीति माहौल में, चाहे सह–कर्मी और प्रींसीपल फर्क जरूर करें लेकिन विद्यार्थी अपने गुरूजनों को उनकी काबलियत और प्रेम के आधार पर सम्मान देते हैं। जिस अतिथि शिक्षक को विद्यार्थियों से मिलने वाले अधिक सम्मान की कीमत सह–कर्मियों की चिड़ की भावना से चुकानी पड़ती है उसे अपने सम्मान और विद्यार्थियों दोनों से दूर होना पड़ता है।

विशेष रूप से एक विधवा, एक तालकशुदा, और एक विकलांग अतिथि अध्यापक की ओर से देखें तब उनकी बातों और परिस्थितियों से उनके मन में नौकरी जाने का भय किसी भी सामान्य शिक्षक से और भी कहीं ज्यादा दिखाई देता है। इस वातावरण को बदलने के लिए विद्यार्थियों के नजरिए से चाहे जितनी भी नीतियां बना दी जाएं, लेकिन जब तक शिक्षकों का मानसिक द्वंद खत्म नहीं किया जाएगा और मानसिक रूप से स्वस्थ बनाया जा सकेगा तब तक शिक्षा विभाग की नीतियां प्रशासन और सरकारों की कोशिशें व्यर्थ ही साबित होंगी।

व्यक्ति पूंजी इसलिए अर्जित करता है कि उसका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो सके लेकिन इस पूंजीवादी युग में हमारा प्रशासन, नीति निर्माता आदि इस तरह प्रभावित होते चले गए हैं कि मानव कल्याण की परिभाषा के साथ ही खिलवाड़ करने लगे हैं । इनके लिए किए गए फैसले और जारी किए गए नए नियम देश भर में फैले सरकारी विद्यालयों को वास्तिवक लाभ दें या न दें लेकिन उन तमाम विद्यालयों के मालिकों और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी व उनके माता पिता के लाभ को ध्यान में रखकर जरूर बनाए जाते हैं, जिन व्यवस्थाओं को हम कॉन्वेन्ट, पब्लिक या प्राइवेट स्कूल के नाम से जानते हैं। CCE पैटर्न, पास करते जाने की नीति आदि सरकारी विद्यालयों में चाहे कारगर साबित न भी हो लेकिन रिहायशी स्कूलों के लिए फायदेमंद हर सूरत में साबित हुई है। इन नीतियों ने जहां गरीबों के बच्चों को सरकारी विद्यालय में इस कगार पर ला दिया है कि नवीं कक्षा में भी वह अपनी बात किसी भी एक भाषा में ठीक प्रकार से लिखने में समर्थ नहीं होते है, वहीं रईसों के बालक इन नीतियों का लाभ उठाकर डीग्रियां हासिल करके बड़ी–बड़ी पैतृक कंपनियों के मालिक बने फिरते हैं। इन नीतियों का उद्देश्य गरीबों को गरीब और अमीरों को अमीर बनाए रखना नहीं है तो क्या है?

आज का समाज पूंजीवादी है लेकिन पूंजीवाद में भी अर्थशास्त्र के कुछ नियम है कि स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मस्तिष्क और शिक्षा मिलकर अच्छा उत्पादन करती हैं। अतरू शिक्षक जो शिक्षा ग्रहण करके आया है उसके शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ बनाए रखने का जिम्मा भी इस पूंजीवाद को उठाना ही चाहिए। अन्यथा नीतियां केवल कागजों और कॉन्वेन्ट स्कूलों तक ही सीमित रह जाएंगी।

सरकार का इस प्रकार का रवैया ये इंगित करता है कि कहीं सरकारी विद्यालयों में ऐसा माहौल इसलिए तो नहीं बनाया जा रहा है कि आने वाले दिनों में इन विद्यालयों को लोक–निजी–साझेदारी के अंतर्गत (NGO) गैर सरकारी संगठनो या निजी क्षेत्र कम्पनियों को दे दिया जाए। यदि ऐसा नहीं है तो सरकार अपने विद्यालयों को इस तरह अनदेखा क्यों करती? संविदा अध्यापकों की ओर क्यों ध्यान नहीं दिया जाता है? अब इन अध्यापकों को बाँध कर रखने की एक नई तकनीक का उपयोग किया जा रहा है कि इनके संविदा का प्रत्येक वर्ष नवीनीकरण किया जाता है। जिससे इन अध्यापकों को एक और वर्ष काम मिल जाता है परन्तु इस बेरोजगारी में वे इस बात को अनदेखा कर देते हैं कि उनकी पात्रता में एक और वर्ष कम हो गया है।